प्रसाद के स्मृति-दिवस पर

जगदीश गुप्त

ओ वाणी के मधुमय प्रसाद !
तुम वर्तमान की प्यास बुझाने को अतीत के तीर गये
कर मूर्तिमान इतिहास युगों के अन्धकार को चीर गये
गूँथ गये तुम्हारे एक सूत्र में भूत-भविष्यत-वर्तमान।
इतनी विस्तृत हो गयी दृष्टि, हो गये तुम्हें वे सब समान।
तुम भूतकाल की सीमाओं के स्रष्टा बन कर झूम उठे।
तुम वर्तमान में भी भविष्य के द्रष्टा बनकर झूम उठे ।
है गूँज रहा अब तक निनाद।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद ।
भावों का ''झरना'' फूट पड़ा डर में करूणा की ''लहर'' उठी।
जो घनीभूत पीड़ा मस्तक में छायी थी वह कहर उठी।
श्रृँगार हो गया ''आँसू'' की धारों से धुल-धुल कर पवित्र
लेखनी तूलिका बनी और बन गये अमित सौन्दर्य - चित्र।
ओ कवि ! तुमने छू दिया तनिक तो वाणी वरदायिनी बनी।
मनु में मानवता जाग उठी जब श्रद्धा ''कामायनी'' बनी।
तब तुम महान हो निर्विवाद ।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद।

उद्देश्य तुम्हारा श्रान्त भवन में टिक रहने की चाह नहीं।
तुम पहुँच गये थे उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं।
प्रतिमा की किरणें फूट पड़ी जगमग जगमग हो उठा ''इन्दु''।
तुम अमर बने नागरी भाल के उज्ज्वल अमल सुहाग बिन्दु।
पलकर रहस्य की ''छाया'' में तुम थे कितने सुकुमार हुये।
पश्चिमी प्रभावों से बिहीन भारत संस्कृति के द्वारा हुये ।
युग युग तक आते रहो याद।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद।

.....1

जब कोमल कोमल शब्दों के तुम घोल हृदय का प्यार उठे।
निश्वासों से छूकर वीणा के सातों स्वर झंकार उठे।

''तितली'' के पंखों सी सुन्दर कल्पना तुम्हारी मधुर वेष।
तुमने दी मधु की ''एक घूँट'' जब हिन्दी थी ''कंकाल'' शेष।
वह चली तुम्हारे मस्तक से कविता-सुरसरि की तरल धार।
तुम रहे ''इन्दु'' के सदा शीश पर लिये, पी गये दुर्निवार।
भर हृदय पात्र में विष-विषाद।
तुम सचमुच शंकर थे ''प्रसाद''।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद।

-000-

यह कविता आज से लगभग 40-42 साल पहले लिखी गयी थी। संयोगवशात् इसी वर्ष ''कामायनी: अर्धशती'' के समारोह में प्रसाद-मन्दिर वाराणसी के मंच पर विशिष्ट श्रोताओं के समक्ष मुझे सुनाने का अवसर मिला जिसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। लोगों को लगा कि आज भी इसकी पंक्ति प्रेरक और स्मरणीय हैं तथा प्रसाद की चेतना को मूर्त करने में सक्षम हैं।

.....2